www[redacted]

RNI No. 26281/74 रजि. नं. पी.बी./जे.: 1/2012-1४

कृण्वन्तो ओ३म् विश्वमार्यम्

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब

साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख साप्ताहिक पत्र

मूल्य : 2 रु.
वर्ष: 70 अंक: 32
सृष्टि संवत 1960853114
10 नवम्बर 2013
दयानन्दाब्द 189
वार्षिक : 100 रू.
आजीवन : 1000 रू.
दूरभाष : 2292926, 5062726

जालन्धर

वर्ष–70, अंक : 32, 7/10 नवम्बर 2013 तदनुसार 25 कार्तिक सम्वत् 2070 मूल्य 2 रु०, वार्षिक 100 रु० आजीवन 1000 रु०

आओ ! वेदोद्यान चलें

–ले० श्री भद्रसेन 182-शालीमार नगर होशियारपुर

(गतांक से आगे)

समाज की सामाजिक स्थिति पारस्परिक व्यवहार पर ही निर्भर है और परस्पर का सारा व्यवहार विश्वास से ही चलता है। यदि एक का दूसरे पर विश्वास न हो, तो आपस का कोई भी व्यवहार सम्भव न हो सकेगा। विश्वास वहीं होता है अथवा टिकता है, जहां सच्चाई होती है। सच्चाई न होने पर अर्थात् धोखे से आपस का विश्वास टूट जाता है। अत: प्रश्न होता है, कि सत्य क्या है ? क्योंकि अनेक अवसरों का पता लगाना कठिन हो जाता है, कि सत्य कौन सा है ? और झूठ क्या है ? ऐसी स्थिति में दोनों के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए एक मन्त्र में कहा है-

सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय, सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते।
तयोर्यत् सत्यं यतरदृजीयस्तदित् सोमोऽवति हन्त्यसत्॥ 7,104,12

सत्य वह है जो सरल, सीधा, स्पष्ट, बनावट-छल-कपट, भय रहित है। परन्तु झूठ कठिन, टेढ़ा, अस्पष्ट, छल-कपट, भय और बनावट से युक्त होता है। इसलिए कहते है एक झूठ को छिपाने के लिए सौ झूठ बोलने पड़ते हैं। अत: झूठ बोलना अधिक कठिन है तभी तो कहते हैं- झूठ के पैर नहीं होते।

इस प्रकार जीवन के विविध पहलुओं पर प्रकाश डालने वाले अनेक मन्त्र यहां प्रस्तुत किए जा सकते हैं। पर इतने से ही स्पष्ट हो जाता है, कि ऋग्वेद आदि अमर साहित्य मानव की प्रगति, समृद्धि, सुख, शान्ति के लिए अत्यन्त उपयोगी सन्देश देता है।

5. यजुर्वेद-परिचय

वेदोद्यान के दूसरे भाग में जब हम प्रवेश करते हैं, तो वहां अनेक तरह के 1975 उद्भिज रूपी मन्त्र हमारा आहवान् करते हुए दिखाई देते हैं। चालीस क्यारियों रूपी अध्यायों में बंटे हुए। इस 1975 क्षेत्रफल वाले दूसरे भाग का नाम यजुर्वेद है। संस्कृत साहित्य और विशेषत: वैदिक वाङ्मय में कर्मकाण्ड की दृष्टि से यजुर्वेद का प्रमुख स्थान है। अर्थात् यजुर्वेद में विविध प्रकार के यज्ञों की विधि और स्वरूपों का विशेष रूप से वर्णन आता है।

यज्ञ और यजु. ये दोनों शब्द यज् धातु से बनते हैं, जोकि देव पूजा, संगतिकरण और दान अर्थ में हैं। जिसका भाव है कि पूज्यों की पूजा, अपेक्षित पदार्थों और तत्वों का सम्मिश्रण (मिलान), शिल्पकला तथा जरूरतमंदों एवं समाज, देश आदि के लिए धन, विद्या, श्रम, समय, द्रव्य आदि का दान करना।

भारतीय साहित्य के विविध विषयों से सम्बन्ध रखने वाले ग्रन्थों में तपोयज्ञ, जपयज्ञ, ज्ञानयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ और अतिथि-यज्ञ आदि यज्ञों का वर्णन मिलता है। इससे यज्ञ शब्द एक प्रकार के कर्म का वाचक प्रतीत होता है। इसीलिए यजुर्वेद से सम्बन्ध रखने वाले शतपथ ब्राह्मण ने कहा-यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म 1, 7, 1, 5 अर्थात् किसी के भले की कामना और अच्छे साधनों से किए जाने वाले हर शुभ कर्म का नाम ही यज्ञ है। यजुर्वेद के अध्ययन और यज् धातु के अर्थों का विश्लेषण करने से भी इसी भाव की पुष्टि होती है।

याज्ञिक प्रक्रिया में विशेष यज्ञों को करने वाले चार ऋत्विज होते हैं, जिनको होता, उद्गाता ब्रह्मा और अध्वर्यु के नाम से पुकारा जाता है। याज्ञिक पद्धति में यजुर्वेद का अध्वर्यु से सम्बन्ध माना जाता है। इसी अध्वर्यु शब्द के अर्थ को स्पष्ट करते हुए निरुक्तकार यास्काचार्य ने लिखा है-(अध्वरं युनक्ति, अध्वरस्य नेता, अध्वरं कामयत इति वा, अपि वाऽधीयाने युरुपबन्ध:, अध्वर इति यज्ञ नाम ध्वरिति=हिंसा कर्मा तत्प्रतिषेध: 1, 3, 1

यज्ञ के अनेक नामों में से उसका एक नाम अध्वर है, क्योंकि इसमें किसी प्रकार की हिंसा, किसी का अहित नहीं किया जाता है। ऐसे सर्वहित कारक यज्ञ की जो व्यवस्था करता है, अध्वर = यज्ञ का अगुआ होता है, वह ही अध्वर्यु कहलाता है, अत: यज्ञ विधि की सारी व्यवस्था करने वाले को अध्वर्यु कहते हैं, इसलिए अध्वर्यु कर्मकाण्डात्मक यज्ञों का अधिष्ठाता होता है।

याज्ञिकों की ऐसी भावना है, कि विभिन्न फलों की प्राप्ति के लिए किए जाने वाले विविध यज्ञों और यज्ञ सम्बन्धी विशेष क्रियाओं तथा उनमें विनियुक्त होने वाले मन्त्रों एवं यज्ञानुष्ठान से प्राप्त होने वाले फलों का यजुर्वेद में विशेष रूप से वर्णन किया गया है। अर्थात् किस उद्देश्य से, कौन यज्ञ, कैसे, किन मन्त्रों से करना चाहिए ? यह सारी प्रक्रिया यजुर्वेद में वर्णित हुई है। अत: दार्श, पौर्णमास, अग्निहोत्र, चातुर्मास्य, राजसूय, अश्वमेध, पुरुषमेध, सर्वमेध आदि बृहद् यज्ञों और उनसे सम्बन्ध रखने वाले पदार्थों, तत्वों की इस वेद में विशेष चर्चा आती है।

वैदिक वाङ्मय में यजुर्वेद शुक्ल और कृष्ण दो भागों में बंटा हुआ माना जाता है। इन शुक्ल-कृष्ण रूपी दो भेदों के सम्बन्ध में एक बड़ा विचित्र आख्यान मिलता है, कि कृष्ण द्वैपायन श्री वेद व्यास जी के पट्ट शिष्य श्री वैशम्पायन ने अपने शिष्य याज्ञवल्क्य को यजुर्वेद पढ़ाया। बाद में किसी कारण से वैशम्पायन उससे नाराज़ हो गए और रुष्ट होकर उन्होंने याज्ञवल्क्य को वह पढ़ा-पढ़ाया लौटाने के लिए आज्ञा दी। गुरु आज्ञा के अनुसार याज्ञवल्क्य ने वमन के रूप में वह लौटा दिया। उसको दूसरे शिष्यों ने गुरु आज्ञा से तित्तिर पक्षी के रूप में चुग लिया, इसीलिए कृष्ण-यजुर्वेद की शाखा का नाम तैत्तिरीय है।

इस आख्यान के अनुसार भी पहले वाला ज्ञान ही मिले हुए रूप के सामने आया। जिससे स्वत: सिद्ध होता है, कि इस आख्यान से पूर्व यजुर्वेद शुद्ध रूप में था। शुक्ल यजुर्वेद में ब्राह्मण (व्याख्या) भाग रहित पद्यमयी रचना है। (क्रमश:)

www.thearyasamaj.org

अल्पज्ञ

ले० अभिमन्यु खुल्लर 22 नगर निगम क्वार्टर ग्वालियर

काफी लम्बे समय से विचारतंत्री उलझी हुई है-कर्मफल की मीमांसा में। अनेक पृष्ठ रंग डाले हैं, अपने विचारों को अभिव्यक्ति देने में; पर कुछ बना नहीं और जब मस्तिष्क में कुछ स्त्रोत खुलता हुआ दिखाई देने लगा तो जीवात्मा की अल्पज्ञता की ओर मन केन्द्रित होने लगा। अत-पहले अल्पज्ञता पर ही विचार कर लें।

जीवात्मा अल्पज्ञ है, यह विद्वानों से वर्षों से सुनते आ रहे हैं। सुनना, समझना थोड़े ही होता है। फिर समझने के बाद हृदयंगम करना, आत्मसात् करना और बात है।

केवल परमात्मा सर्वज्ञ है तो उसके विपरीत चेतनप्राणी तो जीवात्मा ही है, फिर वह तो अल्पज्ञ ही हुआ। दो सर्वज्ञ नहीं हो सकते। जीवात्मा की हठधर्मी तो देखिए वह अपने को अल्पज्ञ मानने को तैयार नहीं।

हिन्दी के शब्दकोष में अल्पज्ञ की विभक्ति "अल्प" और "ज्ञ" दी है। 'अल्प' माने थोड़ा 'ज्ञ' माने जानने वाला अल्पज्ञ माने थोड़ा जानने वाला या ना समझ। जीवात्मा अल्पज्ञ है, इसके प्रमाण में हजारों उदाहरण दिये जा सकते हैं। रात्रि में प्रगाढ़ निन्द्रावस्था में मुझे क्या मालूम कि सुबह देखूँगा भी या नहीं। संत कह गये हैं-नौ द्वारे का पींजरा, तामें पंछी मौन, रहे अचम्भा जानिए, गए अचम्भा कौन ?

जीवात्मा की अल्पज्ञता का प्रश्न गहरा गया। दूधिए लालू जी को यदि 'अल्पज्ञता' का एहसास होता तो वह कभी 950 करोड़ के चारा घोटाले में नहीं फंसते। पन्द्रह वर्षो तक संपूर्ण ऐश्वर्य, राजसी ठाठ भोगने के पश्चात् जेल। न एयरकण्डीशन कमरा न सुखदायी गाव-गद्दे, कठोर जमीन और दो कम्बल। एक ओढ़ने को और एक बिठाने को। और जैसे जैसे काली कमाई का पता चलता जावेगा, वैसे-वैसे शासन उस पर कब्जा करता जावेगा।

लालू जी के साथ ऐसा नहीं हुआ। पूरा परिवार, पत्नी जिसको उन्होंने बिहार की मुख्यमंत्री तक बनवा दिया था, उनको सावधान सचेत नहीं कर पाई। यह तो हुआ नहीं, बल्कि उस आनन्द में आकण्ठ डूबी रहीं। राँची की बिरसा मुण्डा जेल में लालू जी अकेले ही गए-सम्पूर्ण नाते-रिश्तेदारों से, पार्टी कार्यकर्ताओं से वियुक्त होकर। क्या इसकी कल्पना उन्होंने चारा घोटाला में लिप्त होने पर की थी ? क्या यह जीवात्मा की अल्पज्ञता का प्रमाण नहीं है ?

और लीजिये-एक ही दिन में जीवात्मा की अल्पज्ञता के दो प्रमाण मिल गए। 'संत' आसाराम 'बापू' स्वघोषित कृष्णावतार, 2000 युवतियों से रति-सुख उठाने के पश्चात्, नहीं, नहीं उन्हें मोक्ष सुख दिलाने के पश्चात् नपुंसक, त्रिनाड़ी शूल और पीडोफीलिया से ग्रसित बताए जाने के बाद भी अभी तक जमानत भी नहीं पा सके। यहाँ नपुंसक, त्रिनाड़ी शूल और पीडोफीलिया' की थोड़ी चर्चा की जावे। बापू नपुंसक है, 16 वर्षीय नाबालिग लड़की से बलात्कार नहीं कर सकते, डॉक्टरी जाँच में यह दावा झूठा सिद्ध हुआ। त्रिनाड़ी शूल उपचार नारी वैद्य ही कर सकती है और वह भी परित्यक्ता उनकी शिष्या बताया गया। आयुर्वेद में त्रिनाड़ी शूल कोई बीमारी नहीं है। पीडोफीलिया से ग्रसित व्यक्ति किशोर बालकों से कामवासना तृप्ति चाहता है, करता है। यानी 'बापू' आसाराम को लगभग प्रतिदिन सैक्स की तृप्ति चाहे हूरें हो या गिलमान चाहिए-चाहे उसके लिये अफीम, स्वर्णभस्म और हीरा भस्म का सेवन भी क्यों न करना पड़े। नपुंसक, त्रिनाड़ी शूल और पीडोफीलिया से ग्रसित बताये जाने के बाद भी अभी तक जमानत भी नहीं पा सके। कारागार की सख्त जमीन पर वह भी दो कम्बलों में पड़े हैं। वैभव की पराकाष्ठा देखिए। पूरे विश्व में 450 आश्रम! लाखों भक्त! लाखों भक्तों की भक्ति देखिए कि वह पूर्णतया आश्वस्त हैं कि "बापू" निर्दोष हैं और उन्हें षडयंत्रपूर्वक फंसाया गया है और प्रताड़ित किया जा रहा है। उनकी मुक्ति के लिये जप-जाप चल रहे हैं। प्रदर्शन हुए हैं, जेल के बाहर भी और अन्यत्र भी। व्यक्तिगत अल्पज्ञता और सामूहिक अल्पज्ञता का बेजोड़ उदाहरण मिल गया।

अब आईए, सम्भोग से समाधि तक ले जाने वाले 'भगवान' रजनीश अपना झण्डा गाड़ने अमेरिका-यू.एस.ए. गये थे। उन्हें क्या मालूम था कि अमरीका पहले ही सम्भोग से समाधि या चिर समाधि की ओर अग्रसर है। जेल जाना पड़ा। भक्तों ने प्रधानमंत्री राजीव जी से अनुरोध किया तब ही मुक्त हो कर भारत लौटे फिर पतन गाथा शुरू हुई। यह भी अल्पज्ञ सिद्ध हुए।

प्रखर बुद्धि के धनी मध्यप्रदेश शासन में सर्वोच्च पदों पर आसीन पति-पत्नी युगल अरविन्द जोशी और टीनू जोशी, जो दोनों ही आई.ए.एस. हैं, 42 करोड़ की आय से अधिक संपत्ति के मामले में फंसे पड़े हैं, धन-वैभव व शासकीय पद की गरिमा से मण्डित अब समस्त प्रतिष्ठा गवां कर धूल-धसरित हो रहे हैं।

उपर्युक्त उदाहरणों में से दो, लालू जी और जोशी दम्पत्ति में आत्मा के बताये गये छः महाबली शत्रुओं में से केवल लोभ के शिकार हुए और बाकी दो 'सन्त' आसाराम और 'भगवान' रजनीश काम और लोभ के। इस सूची में मेरी जानकारी के अनुसार उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश और हरियाणा के पुलिस महानिरीक्षक महोदय भी आते हैं। थोड़े से प्रयत्न से और जानकारी भी जुटाई जा सकती हैं।

ये सब उदाहरण भारत के हैं जिन्हें जीवात्मा की अल्पज्ञता का ज्ञान हजारों वर्ष की सांस्कृतिक विरासत में मिला है। जरा, देखिए तो सही :-

1. 'सामान सौ बरस का, पल की खबर नहीं'।

2. 'सब ठाठ धरा रह जाएगा, जब हंसा जाएगा उड़।'

3. मुन्ज के भेजे गए हत्यारों ने मासूम भोज की हत्या नहीं की उसे बता दिया कि चाचा मुन्ज ने राज्य के लोभ से उसकी हत्या करने के लिये जंगल में भेजा है। भोज ने कहा कि चाचा को मेरी मृत्यु का समाचार देने से पहले मेरा संदेश दे देना। भोज ने एक श्लोक लिख भेजा जिसका हिन्दी अनुवाद है-सतयुग का प्रतापी राजा मान्धाता मर गया। समुद्र पर सेतु बाँधने और रावण को मारने वाला राम भी आज कहाँ हैं ? युधिष्ठिर आदि राजा भी स्वर्ग को चले गये। किसी के साथ यह राज्य, यह भूमि नहीं गई। निश्चय ही यह तेरे साथ अवश्य जाएगी। इस श्लोक को पढ़कर मुन्ज के ज्ञान चक्षु खुल गए।

4. ईशोपनिषद के प्रथम मंत्र में ही कहा गया है कि संसार का समस्त वैभव तेरे लिये है, इसका जमकर भोग कर पर यह सोचकर कि सब उस परमात्मा का है-तेन त्यक्तेन भुन्जीथा।' तेरे साथ कुछ नहीं जाएगा।

5. युधिष्ठिर और यक्ष के संवाद का एक प्रश्न-संसार की सबसे विचित्र बात क्या है ? और युधिष्ठिर का उत्तर-संसार की सबसे विचित्र बात यह है कि मनुष्य मृत्यु को रोज देखता है और सोचता है कि यह मरेगा, वह मरेगा पर मैं नहीं। जीवात्मा अल्पज्ञ ही सिद्ध हुआ न।

मनुष्य की बुद्धि को, विवेक को सदैव जाग्रत रखने का एक ही उपाय है-परमात्मा की शरण और मांगना गायत्री मंत्र के अनुकूल-हे परमात्मा! हमारी बुद्धि को कल्याणकारी मार्ग पर ले चल क्योंकि हमारे काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर में फंसने के पूरे-पूरे चांसेज हैं। हम फसेंगे ही क्योंकि जीवात्मा बना ही इन गुणों से है। प्रयत्न और वैराग्य की राह पर चलने वाली विरली ही पुण्यात्मा होती है।

मैं अपनी भड़ास निकाल रहा हूँ। मैं स्वयं जीवन भर इनसे मुक्त नहीं हो सका। कितना कीचड़ लपेटा है, इसे मैं या मेरा परमात्मा जानता है, पत्नी भी नहीं। सूरदास के शब्दों में कहना चाहूँगा-अब लौं नसानी, अब ना नसे हों।

क्या ईश्वर हम से रूठ गए हैं ?

-रमेश चन्द्र पाहूजी 541-एल माडल टाऊन-यमुनानगर

हम सभी भली भाँति जानते हैं कि सृष्टि के आदिकाल से ही उस दयालु ईश्वर ने चार ऋषियों अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा के माध्यम् से क्रमशः हमें ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद का ज्ञान प्रदान किया। इन वेदों में परा और अपरा दोनों विद्याओं का ज्ञान बीजरूप में उपलब्ध है। वेदों का एक-एक मन्त्र बहुमूल्य हीरे मोतियों से जड़ा हुआ है, अपने आप में वरदान है, कई रहस्यों से परिपूर्ण है। महर्षि पातञ्जलि जी का कथन है कि वेद मन्त्र का तो कहना ही क्या, उसका एक-एक शब्द ही अमूल्य है।

''एकः शब्दः सम्यक् ज्ञातः सुप्रयुक्तः स्वर्गलोके कामधुक भवति।''

यदि हमें एक शब्द का भी भली भाँति, यथा संगत ज्ञान हो जाये और हम उसे अपने जीवन में धारण कर लें तो हमारी सब शुभ-कामनायें और मुक्ति प्राप्त करने की ईच्छा भी पूर्ण हो जाये।

यदि हम वेद-मन्त्र के रहस्यों को, तत्त्व-ज्ञान को पूर्णतयः समझना चाहते हैं तो हमें अपने स्तर को ऋषि के स्तर पर ले जाना होगा, अन्तर्मुखी होते हुए चिन्तन, मनन, निद्धिध्यासन करना होगा। ऐसा करना कहाँ तक सम्भव है ? परन्तु 'जिन खोजा तिन पाया, गहरे पानी पैठ।' जितना-जितना हमारा विवेक, वैराग्य, अभ्यास बढ़ता जायेगा, आध्यात्मिक स्तर ऊँचा होता जायेगा, हम वेद-मन्त्र की गहराई में उतरते जायेंगे।

ऋग्वेद का एक ऐसा ही सारगर्भित मन्त्र साधक के मन को भाव-विभोर कर रहा है, वेद रूपी बगिया का एक सुन्दर फूल अपनी ओर आकर्षित कर रहा है और साधक गहन चिन्तन में खो जाता है। वह मन्त्र इस प्रकार से है:

ओ३म् तद्वो अद्य मनामहे सूक्तैः सूर उदिते।
यत् ओहते वरूणो मित्रो अर्यमा यूयमृतस्य रथ्यः॥
(ऋग्वेद 7.66.12)

मन्त्र के प्रथम चरण में वेदमाता आदेश दे रही है:

ऐ साधक, तुम आज ही ब्रह्म-मुहुर्त में, सूर्य देवता के उदय होने के समय उस परमपिता परमात्मा को वेद-मन्त्रों के द्वारा मना लो। अब प्रश्न उठता है कि क्या ईश्वर भी रूठ जाया करता है ? अरे हमने तो सुना था, जाना था कि ईश्वर तो सदैव समभाव में रहता है, समरस है। कोई उसका सिमरन करे या न करे, वेद-प्रशस्त मार्ग पर चले या न चले, इन सब से उसकी मता में कोई अन्तर नहीं पड़ता। वह किसी से भी, चाहे वह आस्तिक हो या नास्तिक कोई भेद-भाव, राग-द्वेष नहीं करता। उसके द्वारा प्रदत्त सृष्टि की सारी नेमतें, जैसे सूर्य की धूप, वायु, जल आदि सबके लिए एक समान है। इतना ही नहीं सब जीवों को सत्य पथ पर चलने के लिए समान रूप से प्रेरित करता है। ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना तो हम अपने ही कल्याण के लिए करते हैं, उसके गुण, कर्म, स्वभाव को धारण करते हुए आनन्द प्राप्त करने के लिए, न कि उसे प्रसन्न करने के लिए।

परन्तु प्रश्न तो वहीं का वहीं खड़ा है। वेदमाता तो कह रही है कि उसे सूर्य के उदय होते ही मना लो। आईये, अपने चिन्तन को आगे बढ़ाते हुए विचार करते हैं कि इस संसार में कोई कैसे रूठता है। इस जगत में दो प्रकार के मनुष्य हैं। सज्जन और दुर्जन। दोनों के रूठने में बहुत अन्तर है। जब एक दुर्जन व्यक्ति रूठ जाता है तो उससे केवल अनिष्ट और हानि की ही संभावना हो सकती है, न जाने कब क्या कर बैठे, यही शंका रहती है। उसके रूठने से कोप भवन जैसे दृश्य ही नज़र आते हैं। कैकेयी के रूठने से क्या का क्या हो गया ? परन्तु एक सज्जन के रूठने से किसी का अहित नहीं होता क्योंकि उसके हृदय में सदैव ''सर्वे भवन्तु सुखिनः...........'' की भावना समाई रहती है। उसका रूठना तो एक माँ के रूठने जैसा होता है जिसके हृदय में बेटे के लिए सदैव प्यार, ममता और आशीर्वाद ही होता है। वह उसके साथ दिन-प्रतिदिन के व्यवहार में, उसकी देखभाल में कमी नहीं आने देती। माँ के रूठने का तो केवल एकमात्र यही कारण होता है कि उसका पुत्र उसकी आज्ञाओं का पालन न कर अपने सुपथ से भटक गया होता है। माँ के रूठने का आभास तभी होता है जब पुत्र उससे कोई सुझाव माँगता है तो वह कह उठती है: 'जाओ! मुझे कुछ नहीं पता, जो तेरे मन में आये वह करो, अब तुम बहुत बड़े हो गये हो।'

इसी प्रकार से जब हम वेद-मार्ग पर न चल, अपने अन्तिम लक्ष्य से भटक जाते हैं तो परम-पिता परमात्मा हमसे रूठ जाता है। हम कैसे जानें कि ईश्वर हमसे रूठ गया है ? स्वामी दयानन्द सरस्वती जी सत्यार्थ प्रकाश के सप्तम समुल्लास के माध्यम् से हमें सन्देश देते हैं: ''जब आत्मा मन को और मन इन्द्रियों को किसी विषय में लगाता व चोरी आदि बुरी व परोपकार आदि अच्छी बात के करने का विचार जिस क्षण में आरम्भ करता है, उस समय जीव की इच्छा ज्ञानादि उसी इच्छित विषय पर झुक जाता है। उसी क्षण में आत्मा के भीतर से बुरे काम करने में भय, शंका और लज्जा तथा अच्छे कामों के करने में अभय, निःशंकता और आनन्द उत्साह उठता है, वह जीवात्मा की ओर से नहीं किन्तु परमात्मा की ओर से है।'' ऐसा आभास सारी मानव-जाति के लिए एक समान है। यदि किसी व्यक्ति विशेष को ऐसा आभास नहीं होता तो वह जान ले कि ईश्वर उससे रूठ गया है। व्यवहारिक शब्दों में हम कह उठते हैं कि उसकी आत्मा मर गई है, जो ईश्वर की आवाज़ को नहीं सुनती जबकि हम भली-भाँति जानते हैं कि आत्मा तो अनिलम् है, अमृतम् है। क्या रूठा हुआ ईश्वर मान जायेगा ? क्यों नहीं ? वेद-मन्त्र का दूसरा चरण कह रहा है कि वह तो हमारा मित्र है, मार्गदर्शक, न्यायकारी है। कब तक एक मित्र दूसरे मित्र से रूठा रहेगा ? आवश्यकता है तो उसे पवित्र हृदय से मनाने की। वह ठहरा सर्वव्यापक सर्व-अन्तर्यामी। उसके आगे हमारा कोई दाव-पेंच, छल-कपट नहीं चलेगा। उसे मनाने का एक ही उपाय है और वह है उसकी स्तुति-प्रार्थना-उपासना करते हुए पूर्ण-रूपेण उसके प्रति समर्पित हो जाना, उसे वह लेना और उसकी आज्ञाओं का पालन करना। उसकी आज्ञाओं का पालन करना ही उसके प्रति समर्पित होने की एक सीढ़ी है।

आईये हम अपना ही परीक्षण निरीक्षण करते हैं। क्या हम ईश्वर की आज्ञायों का पालन कर रहे हैं ? ईश्वर तो आदेश देता है :

'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद् धनम्।'

अर्थात् हे मनुष्य जो उपभोग सामग्री तुझे दी गई है उसका त्यागपूर्वक सेवन कर। जो कुछ तुझे प्राप्त हुआ है, उसमें से यज्ञ का भाग निकालकर जो यज्ञ-शेष बचे उसका ही भोग कर। दूसरे को दिये गये धन पर लालच की दृष्टि से मत देख। यह धन किसी का नहीं है।

अब देखिये निम्नलिखित वेद-मन्त्र में ईश्वर की क्या आज्ञा है ?

'स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्।
आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्।
मह्यं दत्वा व्रजत ब्रह्मलोकं ॥-अथर्ववेद॥'

इस मन्त्र के अन्तिम चरण में वेद भगवान कह रहे हैं यदि तुम्हें मोक्ष की प्राप्ति करनी है तो मेरे द्वारा दिये सातों वरदान उपभोग करने के उपरान्त मुझे ही अर्पित कर दो। इन पर स्वामित्व की भावना मत रख। ये तो केवल तुम्हें तुम्हारा शरीर रूपी रथ चलाने के लिए दिये गये हैं।

जैसे ही हम ईश्वर की आज्ञाओं का पालन करते हुए उसके प्रति समर्पित हो जायेंगे, हमारा रूठा हुआ सखा मान जायेगा। हमें सत्य मार्ग की ओर प्रेरित करेगा और हमें अपने अन्तः करण में उसकी आवाज़ सुनाई देने लगेगी। हमारा जीवन धन्य-धन्य हो जायेगा।

वैदिक धर्म, मत-मतान्तर एवं आर्य समाज

ले०—श्री मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून

सुदूर अतीत में इस सृष्टि की रचना के बाद जब पहली बार मनुष्य का जन्म हुआ तो आंख को खोलने के साथ उसने सोचा होगा कि वह कहां है, कौन है, यह संसार क्या है और उसका उद्देश्य क्या है, आदि ? आरम्भिक मनुष्य इस सृष्टि में अकेला नहीं था। उसके साथ व आस-पास अनेक मनुष्य उत्पन्न हुए थे जो सभी युवा थे और उनमें स्त्री व पुरूष दोनों थे। इसके जन्म लेने से पूर्व ही सृष्टि में वनस्पतियां लहलहा रही थी। जल से भरे नदी व नाले आसपास बह रहे थे। अहिंसक पशु उसके इर्द-गिर्द घूम रहे थे। पक्षी उड़ रहे थे एवं चहचहा रहे थे। सारा वातावरण उसको विस्मित व अचम्भित कर रहा था। इस प्रकार का चिन्तन मनुष्य में तभी होना सम्भव है जब कि उसको किसी एक भाषा का ज्ञान हो। यहां केवल एक ही सम्भावना है कि उसको भाषा संसार के स्रष्टा व रचयिता "ईश्वर" से ही प्राप्त हो सकती थी व हुई थी। यह नया मानव यह नहीं जानता था कि जो प्रकाश सूर्य से उसे प्राप्त हो रहा है, उस सूर्य, प्रकाश आदि के नाम क्या हैं, नदी व जल के स्त्रोत जो उसके आसपास विद्यमान थे, उनके नाम व संज्ञाओं से भी वह सर्वथा अपरिचित व अनभिज्ञ था। उसे स्वयं के नाम व अंगों का भी किंचित अता-पता नहीं था। भूख व प्यास से भी वह सर्वथा अपरिचित था। उसे इन सबके व अपने कर्त्तव्य के बारे में कि जीवनयापन कैसे, किस उद्देश्य से व क्यों करना है, ज्ञात नहीं था। किस काम को करना चाहिये और किन कामों को नहीं इसका भी उसे किंचित ज्ञान नहीं था। इसकी उसे तत्काल आवश्यकता थी जिससे उसका जीवनयापन सार्थक, उद्देश्यपूर्ण व लक्ष्य की प्राप्ति के अनुकूल हो। सभी मनुष्य पूर्णत: अज्ञानी थे। कोई आपस में ज्ञान का आदान-प्रदान नहीं कर सकते थे। भाषा का ज्ञान न होने तक परस्पर बातचीत कर अपने सुख-दुख भी एक दूसरे को बता नहीं सकते थे। ऐसी विषम परिस्थिति कुछ थोड़े समय के लिए उनके सामने उपस्थित हुई। दूसरी ओर ईश्वर सर्वज्ञ होने के कारण उसकी हर परेशानी व कष्ट व दु:ख से परिचित था। वह उसकी हर परेशानी व कष्ट को दूर करने में सक्षम व समर्थ था। उसने फिर देर क्यों लगानी थी ? अपने नित्य ज्ञान, ऋग-यजु-साम-अथर्व वेद को वह आरम्भ में ही चार ऋषियों अग्नि, वायु, आदित्य व अंगिरा के माध्यम से भाषा व मन्त्रार्थ सहित प्रदान करता है जिससे उसके सच्चिदानन्द, सृष्टिकर्ता, सर्वज्ञ व कर्म-फल व मुक्ति आदि के देने वाले स्वरूप का बोध होता है। ईश्वर से प्राप्त सब सत्य विद्याओं के ज्ञान वेद को यह चारों ऋषि अन्य ऋषि 'ब्रह्मा' को प्रदान कर स्वयं भी अन्य वेदों का ज्ञान अर्जित कर पश्चात शेष सभी मनुष्यों को कराते हैं जिससे सृष्टि के आरम्भ से ही सभी मनुष्यों को कर्तव्य के बोध के साथ सृष्टि के निर्माण एवं जीवन के उद्देश्य आदि से जुड़ी शंकाओं का निवारण हो जाता है। उन्हें यह ज्ञात हो जाता है कि भोजन के रूप में कन्द मूल व फलों एवं गोदुग्ध व जल आदि का पान कर जीवन निर्वाह करना है। सृष्टि के आरम्भ में आदि मानवों के सामने भोजन की कोई समस्या नहीं थी। पर्याप्त कन्द मूल एवं फल व दुग्ध प्रचुरता से उपलब्ध था। वेदों के ज्ञान व अपने विवेक से उन्होंने दुग्ध से घृत, नवनीत-मक्खन, छाछ, दही आदि बनाये व कृषि कर गेहूं, चावल, हरि सब्जियां उत्पन्न कर यथा आवश्यकता उनका सेवन आरम्भ कर दिया था। अत: पुस्तकों में जो पढ़ाया जाता है कि आदि मानव सृष्टि के आरम्भ काल में पत्थरों आदि को हथियारों के रूप में प्रयोग करके पशुओं का शिकार कर तथा उन्हें अग्नि में तपा कर अपनी क्षुधा व भूख दूर करता था, यह हमारे विदेशी बन्धुओं का अपनी प्रवृत्तियों के अनुरूप अविवेक व छलयुक्त मान्यता व निर्णय है। यह प्राय: ऐसा ही है जैसे कि अज्ञानी मनुष्य ज्ञानी मनुष्य को अपनी ही तरह अज्ञानी व मूर्ख समझ लेता है। यह एक सौ प्रतिशत सत्य है कि आदि मानव पूर्णत: शाकाहारी व निरामिष भोजी था।

ऋषियों को वेदों का ज्ञान मिलने व उनके द्वारा अन्य मनुष्यों को विद्यादान व शिक्षण के द्वारा ज्ञान प्रदान किए जाने से सभी समस्याओं के हल मिल गये और जीवनयापन से सम्बन्धित कोई मुख्य समस्या नहीं रही। इसे समझने के लिए इतना ही जानना आवश्यक है कि सभी व अधिकांश समस्यायें अज्ञान से उत्पन्न होती हैं और ज्ञान प्राप्त होने पर उनका निवारण हो जाता है। ऐसा ही वेदों का ज्ञान प्राप्त होने व ऋषियों द्वारा उनका प्रचार करने से हुआ। दिन-प्रतिदिन ज्ञान का प्रयोग कर नये-नये आविष्कार व कार्य होने लगे और आर्यावर्त्त समस्त वैभव से पूर्ण हो गया। महाभारत काल तक आर्यावर्त्त में स्वर्णिम युग विद्यमान रहा। वेदों की सहायता से हमारे योग सिद्धि को प्राप्त ऋषि-मुनियों द्वारा धर्म, समाज, राष्ट्र व विश्व के लिए निष्पक्ष, न्याय से परिपूर्ण, मानव हितकारी व कल्याणकारी नियम व नीतियों का प्रचलन हुआ जिससे प्रत्येक मानव सुख-चैन से जीवन व्यतीत करते थे। सृष्टि के आरम्भ में रचित मनुस्मृति ने व्यवस्था दी कि वेद अखिल धर्म-संस्कृति व सभ्यता का मूल है। ज्ञान से पवित्र वा मूल्यवान इस पूरे संसार में कुछ भी नहीं है। जीवन का उद्देश्य अभ्युदय व अपवर्ग अर्थात मोक्ष-मुक्ति की प्राप्ति है। प्रत्येक मनुष्य को वेदाज्ञा के अनुसार प्रात: सायं सन्ध्या अर्थात ईश्वर का ध्यान व चिन्तन, अग्निहोत्र-यज्ञ, पितृ यज्ञ, बलिवैश्वदेव यज्ञ एवं अतिथियज्ञ सम्पादित करने होते थे। शिक्षा में वेद एवं वेदों की व्याख्यायें करने वाले ग्रन्थ हुआ करते थे। इन पर आधारित विज्ञान-प्रौद्योगिकी व शिल्प विद्या का प्रचार था। सभी लोग सम्पन्न, स्वस्थ, निरोगी, दीर्घजीवी, परोपकारी, सेवाभावी, देशभक्त, मातृ-पितृ आचार्य भक्त हुआ करते थे। ब्रह्मचर्य, योग-ईश्वरोपासना एवं यज्ञ आदि का सर्वत्र प्रचार था। कोई भी मांसाहारी न होने के कारण पशु वध की कोई समस्या थी ही नहीं। समय-समय पर आवश्यकता होने पर हमारे ऋषि-मुनि मौखिक प्रचार के साथ वेदों व अन्य विद्याओं के सहायक ग्रन्थ बना देते थे जिनसे मिथ्या-विश्वास उत्पन्न ही नहीं होते थे। यह जान लेना आवश्यक है कि चारों वेद सभी सत्य विद्याओं के आकार ग्रन्थ हैं। मनुष्यों को अपना विवेक विकसित करने के लिए जितनी विद्यायें एवं ज्ञान आवश्यक है वह सब, आधा-अधूरा नहीं अपितु पूर्ण, सृष्टि के आरम्भ में ईश्वर ने मनुष्यों को प्रदान किया था। इस प्रकार लगभग 1.96 अरब वर्ष तक वैदिक धर्म अबाध रूप से आर्यावर्त भारत व सारे भूगोल व विश्व में विद्यमान रहा। इसका प्रमाण सृष्टि की आयु 1,96,08,53,113 वर्ष होना है एवं संसार का प्रथम व प्रमुख वेदेतर धार्मिक ग्रन्थ जिन्दावस्था का मात्र लगभग 2,500 वर्ष पूर्व अस्तित्व में आना है। इससे पूर्व सारी दुनियां में वेद एवं वैदिक साहित्य ही मात्र धर्म व कर्त्तव्यों का ग्रन्थ या पुस्तक थी और सभी लोग उसी का आचरण किया करते थे। जिन्दावस्था से लेकर अब तक नाना मत-मतान्तर उत्पन्न हुए जिनका मुख्य कारण धर्म व कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य के ज्ञान में भ्रान्तियों का होना था। भारत में बौद्ध मत, जैन मत, पौराणिक मत, अद्वैत मत तथा विदेशों में यहूदी, ईसाई मत, इस्लाम मत आदि का आविर्भाव हुआ। धर्म व कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य में भ्रान्तियों के कारण आज से लगभग 5,000 वर्ष पूर्व "महाभारत" का महायुद्ध हुआ था जिसके कारण भारत में सर्वत्र शिक्षा व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गई। अन्धकार में प्राय: ऐसा होता है कि कोई भी वस्तु अपने यथार्थ स्वरूप में न दिखने के कारण उसके अनुरूप भिन्न-भिन्न कल्पनाओं का सहारा लेना पड़ता है जिसमें कुछ सत्य व कुछ असत्य होती हैं। इसी प्रकार महाभारत के बाद अज्ञानता के काल में हुआ। महाभारत के समय में भारत में अन्तिम ऋषि जैमिनी या बादरायण हुए। उनके बाद से ऋषियों व वेदों के पारदर्शी विद्वानों की परम्परा अवरूद्ध हो गई। अल्प ज्ञानी लोगों ने अपनी अल्प मति से धार्मिक, कर्त्तव्य व अकर्त्तव्य के नये-नये ग्रन्थ बनाये व प्रचार किया जो सत्य व असत्य मान्यताओं व नियमों से मिश्रित थे। अज्ञान बढ़ता रहा और महाभारत के कुछ सौ वर्षों बाद मध्यकाल आ गया जब धर्म सम्बन्धी मान्यताओं में अधिकांशत: असत्य व अविवेक पूर्ण मान्यताओं के प्रचार व आचरण का समय था। इसी कारण कालान्तर में नाना प्रकार के मत-मतान्तर उत्पन्न हुए जिनका उल्लेख पूर्व पंक्तियों में किया गया है।

इस प्रकार हम देखते है कि सृष्टि की आदि में ईश्वर द्वारा वेदों के प्रादुर्भाव से वेद मत-धर्म अस्तित्व में आया। महाभारत के बाद वैदिक धर्म में जो भ्रान्तियां उत्पन्न हुई उनसे देश-विदेश में नाना प्रकार के मत-मतान्तरों की नींव पड़ी। धीरे-धीरे इन सभी मत-मतान्तरों से इनके अनुयायियों के हित व स्वार्थ जुड़ गए। आज सब अपने-अपने अज्ञान व भ्रान्तिपूर्ण मतों में स्थित हैं। वह यह जानना ही नहीं चाहते कि उनमें कुछ कमियां हैं या नहीं। कमियों को जानने व उन्हें दूर करने का कोई प्रयास ही नहीं किया जाता है। यदि वैज्ञानिकों के कार्यों पर दृष्टिपात करें तो हमें लगता है कि विज्ञान की उपलब्धियों का कारण उनका सत्य को ग्रहण करना व असत्य को त्याग देना है। धर्म में ऐसा न होने के कारण मत-मतान्तरों की संख्या बढ़ती जा रही है जबकि वैज्ञानिक सभी विषयों में एक मत हैं। धर्म के क्षेत्र में भी ऐसा ही होना चाहिये था। परन्तु अब यह वर्तमान व निकट भविष्य में सम्भव नहीं प्रतीत नहीं होता।

(शेष पृष्ठ 5 पर)

पृष्ठ 4 का शेष- वैदिक धर्म.....

यह होना तो एक दिन अवश्य है क्योंकि Survival of the fittest भांति धर्म के क्षेत्र में सत्य को अवश्यमेव ही प्रतिष्ठित होना है। जो मत सत्य पर 100 प्रतिशत अवलम्बित होगा, वही ठहर पायेगा, अन्य नहीं।

हम यहां दो उदाहरणों से यह कहना चाहते हैं कि ईश्वर ज्ञान वही होगा जो सृष्टि की उत्पत्ति या आरम्भ में दिया जाये और जिसे बाद में कभी भी बदलने की आवश्यकता न हो। यदि यह कहा जाये कि आरम्भ में दिया गया ज्ञान भी ईश्वरीय है और बाद में संशोधित या परिवर्तित ज्ञान भी ईश्वरीय है तो इससे ईश्वर प्रदत्त पूर्ण ज्ञान की त्रुटियां व अपूर्णतायें ज्ञात होतीं हैं जिससे ईश्वर के ज्ञान में वृद्धि-ह्रास या घटना-बढ़ना सिद्ध होता है जो कि असम्भव है। इस कथन को इस उदाहरण से समझा जा सकता है कि माता-पिता सन्तान के उत्पन्न होने के बाद उसकी बौद्धिक व शारीरिक क्षमता के अनुसार उसे ज्ञान देना आरम्भ कर देते हैं। मां बच्चे को गोद में लेकर दूध पिलाती है और उस समय जिस प्रकार की भावना करती या होती है उसका बच्चे के मानसिक स्वास्थ्य या मन की वृद्धि पर प्रभाव पड़ता है। उसको सुलाने के लिए या उसे प्रसन्न करने वा व्यायाम या मालिश आदि करते समय जो वचन या लोरियां माता के मुख से उच्चारित होती हैं, वह भी एक प्रकार बच्चे को दिया जा रहा ज्ञान है। इसी प्रकार पिता के वचनों को सुनकर वह अपने माता-पिता को, उनके स्वर, ध्वनि या आवाज से पहचानने लगता है। बच्चा बड़ा होता रहता है और माता-पिता भी उसे उसकी समझ में आने वाली बातें बताते रहते हैं। जब पांच वर्ष या इससे अधिक वर्ष का होता है तो उसे आचार्यकुल, पाठशाला या विद्यालय में भेजते हैं जिससे वह नियमित शिक्षा प्राप्त कर ज्ञानी व विद्वान बने। यहां हम यह देखते हैं कि बच्चे को माता-पिता ने ज्ञान देना जन्म के लगभग साथ ही आरम्भ कर दिया है। ज्ञान प्राप्ति का यह क्रम मृत्यु पर्यन्त नाना रूपों में चलता है। पहले ज्ञान प्राप्त किया जाता है और बाद के समय में नये ज्ञान की प्राप्ति के साथ पूर्व अर्जित ज्ञान को पुनरावृत्ति द्वारा परिपक्व किया जाता है। कोई भी माता पिता बच्चे को अधूरा, अपूर्ण, असत्य, सृष्टिक्रम का विरोधी व उसके शारीरिक, समाजिक व बौद्धिक व आत्मिक ज्ञान के विरूद्ध शिक्षा नहीं देता है। वह वहीं ज्ञान देते हैं जो उनको विदित होता है। इसी प्रकार पूर्ण ज्ञानवान सर्वज्ञ ईश्वर भी सृष्टि के आरम्भ में युवा स्त्री-पुरूषों को पूर्ण ज्ञान देता है, अधूरा व परिवर्तनीय ज्ञान नहीं देता। अत: इस सिद्धान्त के विरुद्ध मतमतान्तरों द्वारा जो विचार व तर्क दिए जाते हैं वह असत्य, भ्रामक व अपने मत की असत्य युक्तियों से रक्षा के उपाय होते हैं जिससे अल्प बुद्धि लोग ही भ्रमित होते हैं। यदि ईश्वर को बाद में या समय-समय पर परिवर्तन करने पड़ते हैं तो उन संशोधनों के लाभ से पूर्व जन्मों व मृतक जीवात्मायें वंचित रहने से इसका दोष भी परमात्मा पर आता है। यह असत्य है और यह सब बातें कल्पित व भ्रान्त मत के अनुयायियों की मिथ्या युक्तियां ही सिद्ध होती हैं।

ज्ञान के उत्थान व पतन की कहानी को हम नदियों व वर्षा के उदाहरण से भी समझ सकते हैं। सृष्टि के आरम्भ में वेदों का ज्ञान ईश्वर से प्राप्त हुआ जो कि पूर्ण था और जिसमें किसी प्रकार की कोई न्यूनता या त्रुटि नहीं थी। आर्यावर्त के तिब्बत में मनुष्यों की उत्पत्ति के बाद मनुष्य धीरे-धीरे सारी दुनियां में फैलते रहे और वेदों के अनुसार जीवनयापन करते रहे। भारत के ऋषि-मुनियों ने भी सारे विश्व में जहां-जहां मानव थे, वेद धर्म के प्रचार की सुन्दर व्यवस्था कर रखी थी। इस कारण महाभारत काल तक अन्य कोई मत संसार में उत्पन्न नहीं हुआ। महाभारत काल के बाद वेद-धर्म के प्रचार की व्यवस्था छिन्न-भिन्न या बाद्धित हुई जिससे ज्ञान घटता गया और अज्ञान बढ़ता गया। सूर्य का प्रकाश जहां तक पहुंचता है, वहां सभी वस्तुएं स्पष्ट दृष्टिगोचर होती हैं और जहां वह प्रकाश नहीं पहुंचता वहां अन्धकार होने के कारण वस्तुएं स्पष्ट दृष्टिगोचर नहीं होती। अत: ज्ञान न होने, अज्ञान होने या भ्रमूलक ज्ञान के कारण मत-मतान्तर अस्तित्व में आते हैं। नदी के उदाहरण से इसे इस प्रकार जान सकते हैं कि जहां-जहां नदी जाती है उसके दोनों ओर के स्थान हरे-भरे होते हैं। वहां कृषि का कार्य उत्तम प्रकार से सम्पादित होता है। बड़ी नदियों से उसकी शाखायें निकाल कर विस्तृत भाग में सिंचाई कर कृषि उत्पादन को बढ़ाया जा सकता है जिससे ऊसर भूमि भी कृषि योग्य बन जाती है। परन्तु असिंचित भूमि में कृषि की फसल या तो होती नहीं या अच्छी नहीं होती। इसी प्रकार "सत्य वैदिक धर्म" का प्रचार यदि किन्हीं स्थानों में नहीं होगा तो वहां असत्य अपना अधिकार स्वमेव प्राप्त करता है जैसे कि जिस स्थान पर प्रकाश नहीं पहुंचता वहां अन्धकार स्वमेव होता है। जहां-जहां वेदों का प्रचार किन्हीं कारणों से बन्द हो गया, रूक गया या कम हो गया वहां अज्ञान व अधर्म बढ़ने लगा जिसका कारण वहां कालान्तर में सत्य व असत्य मिश्रित मत, मतान्तर, मजहब, सम्प्रदाय आदि उत्पन्न होते गये। जहां-जहां जितनी वर्षा होती है वह भूभाग वनस्पतियों व कृषि के उत्पादों से हरे-भरे रहते हैं और जहां वर्षा कम या बिल्कुल नहीं होती वहां हरियाली कम व रेगिस्तान जैसी स्थिति होती है। इसी प्रकार से धर्म व मत-मतान्तर की स्थिति है।

विज्ञान एवं धर्म के विषय में भी विचार कर लेना समीचीन है। विज्ञान ने सत्य को अपनाया। वह सारी मानव जाति की उन्नति व सुख का कारण बना। धर्म में किन्हीं कारणों से भ्रान्तियां उत्पन्न होने पर मत-मतान्तर उत्पन्न हुए। इनकी मान्यतायें कुछ समान व किंचित परस्पर विरोधी भी रही। इससे संघर्ष हुए और लाखों करोड़ लोग मृत्यु का शिकार हुए। प्रत्येक विचारशील, बुद्धिमान वा विवेकशील मनुष्य जानता है कि संसार के सभी लोगों का धर्म तो एक ही है यथा सत्य बोलना, माता-पिता, आचार्य व वृद्धों का आदर-सत्कार करना, तर्क से सिद्ध सच्चे ईश्वर की उपासना करना, सत्य का ग्रहण व असत्य का परित्याग, सत्य को मानना व मनवाना, असत्य को छोड़ना व छुड़वाना, अविद्या का नाश व विद्या की वृद्धि करना, ज्ञान व विज्ञान को जीवन में स्थान देना व किसी का अपकार न करना एवं परोपकार व सेवाभावी जीवन व्यतीत करना, केवल अपनी उन्नति के प्रति ही सजग न होना अपितु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझना, पक्षपात रहित न्यायाचरम आदि। ईश्वर की उपासना नाना प्रकार से की जा सकती है। परन्तु उसमें भी बुद्धिमानों व श्रेष्ठ लोगों का अनुसरण करना। यहां यह बताना उचित होगा कि उपासना का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ "योग दर्शन" है। इसमें किसी मत का आग्रह नहीं है। यह सारी दुनिया के सभी मतों के लोगों के लिये बनाया गया था तथा आज भी है। इसे अपनाकर ही मत-मतान्तरों का यथार्थ धर्म में एकीकरण हो सकता है। अत: विज्ञान का अनुसरण कर वैज्ञानिकों की ही भांति सत्य का ग्रहण व असत्य का त्याग प्रत्येक मत व मतान्तर, मजहब व सम्प्रदाय को करना चाहिये।

अब आर्य समाज को लेते हैं। आर्य समाज क्या है। आर्य समाज वस्तुत: सत्य को जानने, मानने, स्वीकार करने व स्वीकार कराने वाला एक धार्मिक, सामाजिक व आर्थिक क्षेत्रों में समग्र क्रान्ति करने वाला अग्रणीय आन्दोलनकारी संगठन है। जिस प्रकार वैद्य, चिकित्सक व डाक्टर रोगी के शरीर से अनावश्यक पदार्थों व रोग के कीटाणुओं को नष्ट कर रोगी को स्वस्थ करते हैं इसी प्रकार आर्य समाज भी धार्मिक व सामाजिक जगत से अज्ञानता, कुरीति व मिथ्या विश्वासों आदि को दूर कर मानव जीवन को स्वस्थ करता है। इसकी उपमा का कोई अन्य संगठन देश या संसार में उत्पन्न नहीं हुआ न आज विद्यमान है। यह आर्य समाज अपनी उपमा स्वयं ही है। आर्य समाज ने सभी मत-मतान्तरों, मजहब व सम्प्रदाय आदि का मन्थन कर यह पाया कि संसार में केवल व केवल-मात्र वेद ही ईश्वरीय ज्ञान हैं तो शत-प्रतिशत सत्य व प्रमाणिक है। वेदों में जो कर्त्तव्य व अकर्त्तव्य बताये गये हैं, वही वस्तुत: धर्म व अधर्म वा पाप व पुण्य हैं। दुनिया के सभी लोगों को वेदों का अध्ययन कर उसके सत्य अर्थों को जानने का प्रयत्न करना चाहिये और उसी का आचरण करना चाहिये। धर्म के पालन में वेद परम प्रमाण हैं। जो भी वेदों के विरुद्ध आचरण है वह पाप व अधर्म है। आर्य समाज वेदों के आधार पर निराकार, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान व सच्चिदानन्द स्वरूप वाले ईश्वर की योग पद्धति से उपासना, देवयज्ञ-अग्निहोत्र का अनुष्ठान, माता-पिता-आचार्य-विद्वानों-वृद्धों की सेवा व सम्मान, पशु-पक्षियों आदि के प्रति दयाभाव व उन्हें भोजन प्रदान करना, 16 वैदिक संस्कारों में पूर्ण आस्था व उसका अनुष्ठान, देश भक्ति आदि का आचरण करना सत्य धर्म व मानव धर्म को मानता है एवं उसके सर्वत्र पालन के लिए कार्यरत एक आन्दोलन है। आर्य समाज की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह आलोचनाओं से डरता नहीं, अपितु उसका स्वागत करता है और अन्य मत-मतान्तरों की शंकाओं एवं भ्रान्तियों के समाधान के लिए तत्पर रहता है। आर्य समाज विज्ञान को महत्त्व देता है और धर्म में उसके प्रयोग व पालन को स्वीकार करता है। आर्य समाज किसी व्यक्ति विशेष को धर्म प्रवर्तक या ईश्वर का दूत या सन्देशवाहक न मानकर वेदों एवं वैदिक मान्यताओं को धर्म मानता है और उसका पालन कराने के लिए प्रचार इसलिए करता है कि इसी में विश्व के सभी प्राणियों का कल्याण निहित है। आर्य समाज से पहले सारे विश्व में मत-मतान्तरों में अव्यवस्था थी जिसे आर्य समाज ने वेद एवं सत्य का प्रचार कर कुछ नियंत्रित किया।

सच्चे शिव की प्राप्ति

-ले० विद्यासागर शास्त्री, आदर्श नगर 533/11 कैथल (हरियाणा)

पण्डित अम्बाशङ्कर-सामवेदी, उदीच्यवंशीय ब्राह्मण, बार्द्धभ्य के चिन्ह स्पष्ट दिखाई देते हैं, आयु ५०-५५ के लगभग किन्तु तेजस्वी राज-सम्मान से विभूषित, ग्राम के स्थानीय शासक तहसीलदार, लक्ष्मी के कृपा पात्र, शीलसंपत्ति के भण्डार, यथा समय कोमल और उग्र, धर्मनिष्ठ देशकाल के ज्ञानी, कुला चार विचार के पालक।

रुक्मिणी:-आतिथ्य-सत्कार-प्रवीणा, गृहस्थ-धर्म-निष्णाता, दया दुर्चित्ता, पातिव्रत-धर्मानुकूला मनसा-वाचा कर्मणा पति को सन्तुष्ट रखने वाली (पण्डित अम्बा शङ्कर की पत्नी)

मूलशङ्कर:-(पण्डित अम्बा शङ्कर का पुत्र) मेधा स्वभाव से ही पवित्र तथा अद्भुत, कुशाग्र बुद्धि, ब्रह्म वर्चस आयु से लगभग १३ वर्ष का (सिपाही तथा अन्य पुजारी गण)

प्रथम दृश्य

टंकारा ग्राम में पण्डित अम्बाशङ्कर का घर, नूतन नवार से बुना हुआ पलंग जिस पर पण्डित अम्बाशंकर आसीन हो कर शिव-पुराण का स्वाध्याय कर रहे हैं, प्रसन्न मुद्रा में शिव माहात्म्य को ध्यान पूर्वक पढ़ रहे हैं बीच-बीच में पत्नी को भी सुना देते हैं, मूल शंकर नीचे आसन पर बैठा हुआ पिता के दिए हुए पाठ को स्मरण कर रहे हैं। पत्नी (रुकिमणी) अपने कार्य में व्यस्त है।

अम्बाशंकर:-देवि! आज महाशिव रात्रि के पावन पर्व का परम-पवित्र दिवस है। हमारी कुल परम्परा के अनुसार आज के दिन कैलासवासी भगवान् शङ्कर साक्षात् दर्शन देंगे। आज का दिन बड़ा ही सौभाग्य का है। आज सायंकाल को हम शिव मन्दिर में जाकर रात्रि में जागरण करेंगे। (मूल शंकर की ओर देखकर) हां, पुत्र मूल, तुम एक बात का विशेष ध्यान रखना। आज तुमने शिव रात्रि का व्रत रखकर उपवास रखना है। व्रत को भली प्रकार निभाना कहीं कोई वस्तु खा न लेना। भगवान् भोलानाथ बहुत दयालु है। उन पर भरोसा रख वे अवश्य ही कृपा करेंगे।

रुक्मिणी:-(मन में यह सोचकर कि कोमल-काय इस मेरे पुत्र को इस कठोर व्रत का पालन करना अत्यन्त कष्टदायक होगा) आर्य! मैं आपके विचारों का आनन्द से अनुमोदन करती हूँ, जो आप अपने पुत्र को स्वसदृश धर्मनिष्ठ, शिवभक्त बनाना चाहते हैं।

अम्बाशंकर:-हाँ देवि! मैं यही चाहता हूँ कि मूल मेरे जैसा ही शिव भक्त बनें।

रूक्मिणी:-द्विजवंश में दीपक रूप पुत्र को कुल मर्यादा, धर्म, नीति, सुयोग्य संस्कार आदियों से अवश्य भूषित करना चाहिए, क्योंकि कुल प्रतिष्ठा पुत्र पर ही अवलम्बित है।

अम्बाशंकर:-देवि! तुम ठीक कहती हो, और मूल भी इस योग्य हो गया है।

रूक्मिणी:-किन्तु स्मृतियाँ बचपन में कठिन व्रतों की आज्ञा नहीं देतीं फिर आप जैसे शास्त्र मर्मज्ञों से विशेष क्या कहूँ ?

अम्बाशंकर:-देवि! तुम्हारा यह कथन शास्त्राज्ञा से विरुद्ध है।

रुक्मिणी:-कैसे ?

अम्बाशंकर:-ब्राह्मण यदि अपने पुत्रों को वर्चसी, विद्वान् एवं गुण वान बनाना चाहते हैं, तो पाँचवें वर्ष में ही यज्ञोपवीत संस्कार कर देवें, और तभी से व्रत करवाने आरम्भ करें, ऐसा स्मृतियों में विधान है।

रुक्मिणी:-अभी यह बालक है, जब बड़ा हो जाएगा, तो स्वयंमेव ही व्रत रखा करेगा। मुझे तो भय लगता है कि कहीं मेरे पुत्र - तकलीफ न हो जाए ?

अम्बाशंकर:-नहीं, नहीं। इसे आज उपवास अवश्य ही करना होगा। यह तो मैं स्वीकार करता हूँ कि यह व्रत बहुत कठोर हैं, परन्तु कुल-मर्यादा का पालन करना ही होगा।

रूक्मिणी:-मैं आपके विचारों के विपरीत कैसे चल सकती हूँ।

अम्बाशंकर:-किन्तु देवि। संसार में ऐसे ही कार्यों को करना चाहिये जो पहले भले ही विषतुल्य लगे, परन्तु अन्त में अमृत तुल्य प्रतीत हो। (इस प्रकार पत्नी को प्रसन्न करके उसकी सम्मति से मूल-शंकर को व्रतों के फल तथा सुख बताये। जिससे उसे व्रतों पर रूचि हो गई)

अम्बाशंकर:-(मूल शंकर की ओर देखकर) देखो पुत्र! तुमने आज अवश्य ही उपवास रखना है।

मूलशंकर:-बहुत अच्छा पिता जी! आपकी आज्ञा का अवश्य ही पालन करूँगा और कैलास नाथ शंकर जी को अवश्य ही प्रसन्न करूँगा।

अम्बाशंकर:-बहुत अच्छा पुत्र! तुम से मुझे यही आशा थी।

द्वितीय दृश्य

(शिवालय का विशाल आंगन मन्दिर ध्वजादि से सजा हुआ है। भगवान शिव की सुन्दर मूर्ति मन्दिर के मधोमध्य शोभित है। मूलशंकर और अम्बाशंकर अन्य भक्तों के साथ प्रवेश कर रहे है। मूलशंकर ने पीताम्बर धारण कर रखा है। गले में सुन्दर रुद्राक्ष की माला डाल रखी है। ललाट पर चन्दन का तिलक कर रखा है। दाएँ हाथ में शुद्ध जल से भरा हुआ लोटा है और बाएँ हाथ में पूजा की सामग्री का थाल है। कोई भक्त घण्टा बजाता है तो कोई हर हर महादेव बम बम महादेव!! भोलानाथ!!! कहते हैं, घण्टे का मदओ तेज़ी से ध्वनित होता है। मन्दिर गूँज उठता है। परन्तु दो पुजारी शिव की मूर्ति सम्मुख आरती का थाल लेकर जिसमें फूल तथा दीपक है, लिए हुए आरती उतारने में मस्त है।

मूल शंकर:-पिता जी! यहाँ तो भक्त लोग बहुत आये है, और यहाँ का दृश्य बहुत ही मनोहर है।

अम्बाशंकर:-हाँ पुत्र, देखो भक्त कैसे भक्तिभाव से शिव स्तोत्र गा रहे है। कोई आरती गा रहे हैं।

(आरती का स्वर तेज़ हो जाता है, सब मिलकर मस्ती में आरती ही गाने लगते है।)

तुम हो नाथ अगम अगोचर,
जय-जय शिव शंकर॥
महाउग्र है रूप तुम्हार,
शरणमात को तुमने तारा।
तुम अतिशय हो रुद्रमयंकर
जय-जय शिव शंकर॥
शंकर भोलानाथ कहाते,
जो वर माँगे नहीं सकुचाते।
तुम हो गिरीश विश्वंभर,
जय-जय शिव शंकर॥
नील कण्ठ हो शक्ति मन्त हो,
नित्य पापी के देव! अन्त हो।
महेश हे! तुम हो प्रलयंकर,
जय-जय शिव शंकर॥

(आरती का स्वर मन्द हो जाता है)

मूलशंकर:-(शिव जी की महिमा से आकृष्ट हृदय हुआ ।पिता जी! यहाँ तो बहुत ही आनन्दमयं वातावरण है। यहाँ आकर मैं तो बहुत ही प्रसन्न हुआ हूँ।

अम्बाशंकर:-हाँ पुत्र, ये सब शिव जी की ही कृपा है। जो कोई यहाँ आता है वह हँसता हुआ ही जाता है।

मूलशंकर:-फिर तो भगवान् बड़े ही कृपालु है पिता जी!

अम्बाशंकर:-हाँ पुत्र, शंकर जी सभी पर कृपालु है।

मूलशंकर:-(पुजारियों की ओर संकेत करता हुआ) पिता जी! क्या ये लोग यहीं रहेंगे ?

अम्बाशंकर:-हाँ पुत्र, आज की रात यहीं रहेंगे। और सब भक्त रात में शिव जी की चार बार पूजा करेंगे।

मूलशंकर:-क्या इस रात शिव जी की चार बार पूजा की जाएगी ?

अम्बाशंकर:-हाँ पुत्र, इस रात चार बार पूजा की जायेगी, क्योंकि यह शिव रात्रि महाशिव रात्रि है।

मूलशंकर:-तो फिर रात भर ऐसा ही आनन्द बना रहेगा ?

अम्बाशंकर:-हाँ पुत्र, शिव जी की कृपा से ऐसा ही होगा।

(पहले प्रहर की पूजा आरम्भ होती हुई देखकर) देखो पुत्र!-सावधान हो जाओ। अब पहिले प्रहर की पूजा आरम्भ होती है। ध्यान पूर्वक भक्तिभाव से पूजा करना।

मूलशंकर:-जी पिता जी! ऐसा ही करूँगा।

तृतीय-दृश्य

(आधी रात का समय अम्बाशंकर तथा अन्त सब पुजारी निद्रा देवी की गोद में सुखपूर्वक पड़े हुए है। परन्तु मूल शंकर अपना व्रत भंग न हो इस डर से आँखों में जल के छींटों से निद्रा के प्रबल वेग को रोकर मूर्ति में ध्यान लगाता हुआ जागता रहता है। मन्दिर में दो ज्योतियाँ जल रहे है एक से मूल शंकर की आत्मा में, दूसरी से मन्दिर में पर्याप्त प्रकाश है। मन्दिर की चारों दीवारे शान्त है।)

मूलशंकर:-(स्वागत) आह! कितना सुन्दर समय है, मन्दिर में कितनी शान्ति है। (शिव जी के दर्शन की प्रतीक्षा में मूर्ति पर ध्यानस्थ हुआ। यह भगवान शिव के दर्शन का अच्छा समय है। अभी कैलासवासी, त्रिशूलधारी, पितृ धनुष्य धारी, वाशुवत-अस्त्रधारी भगवान् शिव जी के साक्षात् दर्शन होंगे। (सोये हुए पुजारियों को देख, चकित होकर) यह क्या ? सब के सब पुजारी क्यों सो गये ? ओह! पिता जी भी सो रहे है। अब तो बाहर के पुजारी भी ऊँघ रहे हैं।

(क्रमशः)

आर्य समाज नई मण्डी में ध्यानयोग शिविर का समापन

मंगलवार दिनांक 01.10.2013 से पूज्य स्वामी अमृतानन्द सरस्वती होशांगाबाद (म०प्र०) के सान्निध्य में शुरू हुआ "ध्यान योग शिविर" आज रविवार 06.10.2013 राष्ट्र समृद्धि यज्ञ व पूज्य स्वामी जी के प्रवचन के साथ सम्पन्न हुआ। स्वामी जी ने अपने विस्तृत सम्बोधन में कहा कि समग्र मानव जाति दुःखों से छूटने की आकांक्षा रखते हुए सुखों को पाना चाहती है परन्तु अज्ञानवश प्रयत्न कर रहे हैं धन, बल व बुद्धि में सर्वोपरि हो जाने का। ये सब चीजें परिवर्तनीय हैं। इनमें आज कोई अधिक है कल कोई और, परसों कोई और। इस प्रवृत्ति में हमें 1. तृष्णा, 2. लौकिक ऐषणायें, 3. क्रोध, 4. लोभ, 5. मोह, 6. ईर्ष्या और 7. द्वेष-ये सात क्लेश आ घेरते हैं। इस प्रकार जीवात्मा बार-बार देह (शरीर) को प्राप्त करते हैं; और व्याधि, जरा व मरण के चक्र में फंसते चले जाते हैं। इसलिऐ आवश्यक है कि उपरोक्त सातों दोषों से अपने चित्त-मन को हटायें और शरीर, व्याधि, जरा व मरण के चक्र को पार पायें, इसी का नाम योग है। नगर भर से धर्म जिज्ञासुओं ने भारी संख्या में शिविर में भाग लेकर लाभ प्राप्त किया।

सभी ने पूज्य स्वामी जी का सत्कार किया। इस अवसर पर वैदिक साहित्य भी लोगों ने क्रय किया। जलपान के साथ शिविर का समापन हुआ। **-मंत्री आर्य समाज, नई मण्डी मुजफ्फरनगर**

अखिल भारतीय संस्कृत व्याकरण प्रतियोगिता

सभी सज्जनों को सूचित किया जाता है कि प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष भी श्रीमद्दयानन्द आर्ष गुरुकुल एवं श्री रामकृष्ण गोशाला खेड़ा खुर्द दिल्ली-82 में अखिल भारतीय अन्तर गुरुकुलीय संस्कृत व्याकरण प्रतियोगिता (अष्टाध्यायी-कण्ठस्थीकरण, प्रथमावृत्ति, धातुवृत्ति एवं काशिका) आगामी 27 व 28 दिसम्बर 2013 को आयोजित की जा रही है। इच्छुक छात्र सम्पर्क करें। विस्तृत नियमावली शीघ्र भेजी जाएगी।

ओ३म् जय बन्दे सिखाया था ऋषि ने

प्रो० सुन्दर लाल कथूरिया, डी०लिट० जनकपुरी दिल्ली

ओ३म् जय बन्दे सिखाया था ऋषी ने।
ज्ञान का दीपक जलाया था ऋषि ने॥

अंधविश्वासों का डेरा, सो रहा था देश मेरा,
था नहीं दिखता सवेरा, दूर तक फैला अँधेरा,

वेद-सूरज से भगाया था ऋषि ने।
ओ३म् जय बन्दे सिखाया था ऋषि ने॥

दुर्गुणों ने देश घेरा, मत-मतान्तर का बसेरा,
वेद -विद्या लुप्त सी थी, सत्य को हरे में घनेरा,

चीर कोहरा सत्य दिखाया ऋषि ने।
ओ३म् जय बन्दे सिखाया था ऋषी ने॥

दुर्दशा थी नारियों की, वेद पढ़ने की मनाही,
जाति-बंधन की वजय से, हिन्दुओं की थी तबाही,

गुण-करम से जाति, बतलाया ऋषी ने।
ओ३म् जय बन्दे सिखाया था ऋषी ने॥

यज्ञ-संस्कृति से जुड़ो तुम, भोग लिप्सा से हटो तुम,
स्वप्न अपने राज्य को हो, वेद-मंत्रों को पढ़ो तुम,

सत्यविद्या वेद में यह तथ्य समझाया ऋषी ने।
ओ३म् जय बन्दे सिखाया था ऋषी ने॥

नोट:-शुद्ध वर्तनी 'ऋषि' है, किन्तु यहाँ छन्द के आग्रह से सर्वत्र 'ऋषी' का प्रयोग किया गया है।

प्रभो! दुर्गुण दूर करो

(पं० वेदप्रकाश शास्त्री, 4-E, कैलाश नगर, फाजिल्का, पंजाब)

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव।
यद् भद्रं तन्न आ सुव॥

हे सकल जगत् के उत्पत्तिकर्ता, पालनकर्ता एवं संहारकर्ता प्रभो! हे दयालु, अजर, अमर परमात्मन्! हे सर्वव्यापक, आनन्दस्वरूप जगदीश्वर! आप सब जगह व्यापक हो रहे हैं। आप से कोई भी स्थान रिक्त नहीं है। जिधर भी हम देखते हैं उधर आपकी ही सत्ता दृष्टिगोचर होती है। क्या पर्वत की ऊंची से ऊंची चोटियां, क्या समुद्र की गहरी से गहरी सतह प्रभो! सर्वत्र ही आपकी सत्ता विद्यमान है।

हे परमात्मन् देव! हमारे अन्दर जो दुर्गुण, दुर्व्यसन और बुराईयां हैं, उन्हें हटाकर अच्छे गुण, कर्म, स्वभाव और पदार्थ हैं-वह सब हमें प्रदान कीजिए जिससे हम अपने जीवन को शुद्ध-पवित्र और निर्मल बना सकें।

हे जगदीश्वर! हम सभी सदैव कल्याणकारी मार्ग पर चलें। जैसे सूर्य और चन्द्र सदैव अपने मार्ग पर चलते रहते हैं, उससे कभी विचलित नहीं होते, उसी प्रकार हम सभी कभी भी वेद के मार्ग से विचलित न हों। अपितु अपने जीवन को सद्भावना, परोपकारी, स्नेह से परिपूर्ण बना सकें। अत: आप हमें सुपथ पर चलने हेतु निरन्तर प्रेरित करते रहें।

हे दयालु-कृपालु प्रभो! आप हमें वह मेधाबुद्धि प्रदान करें जो प्राचीन काल से ऋषियों, मुनियों, विद्वानों को देते आए हैं। आज हम सबको उसी मेधाबुद्धि से युक्त कीजिए जिससे हम आपके द्वारा दिए गए वेदज्ञान को भली प्रकार समझने में समर्थ हो सकें। अपने जीवन को सदैव उन्नमय, प्रगतिशील, सदाचार युक्त बनाने हेतु निरन्तर प्रयत्नशील रहें।

इस प्रात:काल की शुभवेला में हम सभी अबोध बालक-बालिकाएं मिलकर आपसे यही प्रार्थना करते हैं, यही याचना करते हैं।

भगवान! आप इसे स्वीकार करें, स्वीकार करें।
ओ३म्, शान्ति: शान्ति: शान्ति: ॥

वेद वाणी

मृत्यो: पदं योपयन्तो यदैत, द्राघीय आयु: प्रत्तरं दधाना:।
आप्यायमाना: प्रजया धनेन, शुद्धा: पूता भवत यज्ञियास:॥

-ऋ० १०।१८।२; अथर्व० १२।२।३०

विनय-संसार के हरेक प्राणी पर मृत्यु ने पाँव रखा हुआ है। जिस दिन उसकी इच्छा होती है उस दिन वह उस पाँव को दबाकर प्राणी को कुचल डालती है, समाप्त कर देती है। पर, हे नर-तनधारी मनुष्यों ! तुममें वह शक्ति है जिससे कि तुम मृत्यु के उस पैर को ढकेलकर अमर बन सकते हो। इस संसार में तुम मरे हुओं की तरह न रहकर, न सड़कर, अमर पुत्रों की तरह दृढ़ता से चलो; पूत और यज्ञिय बन जाओ। ऐसे बनने से तुममें वह आत्म-शक्ति जग जाएगी कि तुम उस मृत्यु के पैर को ढकेल फेंकोगे। ठीक आहार, व्यायाम, तप आदि द्वारा शरीर को शुद्ध रखो और अन्दर सत्त्वशुद्धि, सौमनस्य आदि लाकर अन्त: करण को पवित्र रखो; और फिर इस शरीर और मन से यज्ञिय कर्म ही करते जाओ; इससे तुम निस्सन्देह अमर निकल आओगे। यह सच है कि यज्ञिय जीवन से मृत्यु मारी जाती है, तब मनुष्य की आयु सौ वर्ष तक चलने वाला यज्ञ हो जाता है, तब वह मनुष्य पूर्ण सौ वर्ष की दीर्घ विस्तृत आयु को यज्ञरूप में धारण करता है। हम मरे हुए मनुष्य तो आयु को 'धारण' नहीं कर रहे हैं, किन्तु आयु के एक बोझ को जैसे-तैसे ढो रहे हैं। जब शरीर को आत्मा धारे हुए होता है तो आत्मा शरीर को पूर्ण सौ वर्ष तक स्वस्थ चलने की-जीवन-यज्ञ को सौ वर्ष तक अखंडित चलने की-आज्ञा देता है, और इस जीवन में प्रजा को सृजने द्वारा तथा धन के बढ़ाने द्वारा अपनी विकास की इच्छा को परितृप्त करके यज्ञ को पूर्ण करता है। आत्मशक्ति का प्रकाश करने के लिए ही आत्मा शरीर को धारण करता है। अत: शरीर पाकर इस जगत् में कुछ न कुछ उपयोगी वस्तु का प्रजनन करना, सृजन (Create) करना तथा जगत् के सच्चे ऐश्वर्य को (धन को) बढ़ा जाना आवश्यक है। संसार में आई सब महान् आत्माएँ इस संसार में कुछ न कुछ जगत्-हितकारी वस्तु का सृजन करके तथा जगत् में किसी उच्च से उच्च ऐश्वर्य को बढ़ाकर जाती हैं। हे मनुष्यों ! उठो, मृत्युमय जीवन छोड़ो, शुद्ध पूत और यज्ञिय बनो और मृत्यु के पैर को परे हटाकर अपने अमरत्व की घोषणा कर दो।

-साभार वैदिक विनय, प्रस्तुति रणजीत आर्य

www.thearyasamaj.org

भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति की संदेश वाहक दीपावली

लेखकः प्रो. स्वतंत्र कुमार उप प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब

भारतीय सभ्यता और संस्कृति के विकास में जिन महापुरुषों का नाम ग्रहण किया जा सकता है। उनमें महर्षि दयानन्द सरस्वती सबसे पहले आते हैं। उनकी सबसे बड़ी विशेषता उनका राष्ट्रवादी होना है। वह भारत की गुलामी से अत्यन्त व्याकुल थे। महर्षि दयानन्द ने ही सबसे पहले स्वतंत्रता का उद्घोष किया था। उन्होंने कहा कि विदेशी सुशासन से स्वदेशी शासन ही सर्वप्रिय तथा उत्तम है। दयानन्द सरस्वती मूलत: एक धार्मिक महापुरुष थे परन्तु उन्होंने जो धर्म की व्याख्या की है वह संकीर्ण साम्प्रदायिकता से हट कर मानव के सर्वांगीण विकास में सहायक गुणों का समावेश है जिसके कारण सच्ची मानवता का विकास होता है। उनकी दृष्टि में मनुष्य वही है जो अपने तुल्य अन्य को भी समझे तथा सबके प्रति सत्य, न्याय तथा धर्म का व्यवहार करे।

महर्षि ने आत्मा की अमरता का सिद्धान्त लोगों को बताया। उन्होंने कहा कि आत्मा शरीर नहीं है किन्तु शरीर का स्वामी आत्मा है। आत्मा को जान कर मनुष्य ईश्वर को प्राप्त कर सकता है। महर्षि का यह अटूट विश्वास था कि वेदों में सब सत्य विद्याएं हैं और वेदों का पढ़ना पढ़ाना तथा सुनना सुनाना ही परमधर्म है। इस वेद के बिना कोई भी मनुष्य जाति उन्नति नहीं कर सकती।

आज भारत जिन समस्याओं से जूझ रहा है। महर्षि ने उनका समाधान पहले ही बता दिया था। आज पुरुष तथा स्त्री में अनुपात का बढ़ना जोकि भ्रूण हत्या का फल है, समाज के लिये एक कलंक है परन्तु महर्षि ने नारी जाति के सम्मान की बात की। उन्होंने मनु जी के शब्दों में कहा कि जहां नारी की पूजा होती है वहां देवता रमण करते हैं। उन्होंने यह घोषणा भी की कि ये माताएं जगजननी है।

आज की शिक्षा पद्धति दिशाहीन है। उससे व्यक्ति के निर्माण की तो कल्पना ही नहीं की जा सकती है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थ प्रकाश के दूसरे समुल्लास में बच्चों की शिक्षा किस प्रकार की होनी चाहिये, उसका मार्ग दिखाया है। मूल्यपरक शिक्षा तथा ज्ञानपरक शिक्षा में समावेश होना चाहिये। शिक्षा का उद्देश्य स्वार्थी निष्ठुर, भ्रष्टाचारी मानव न बना कर आदर्श मानव बनना होना चाहिये। आज मूल्यपरक शिक्षा की नितान्त आवश्यकता है। इसकी कमी से देश भ्रष्टाचार के रसातल में धंसता जा रहा है।

महर्षि दयानन्द ऐसी सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, आध्यात्मिक तथा राजनीतिक व्यवस्था को समाज में स्थापित करना चाहते थे जिस व्यवस्था से न केवल भारत बल्कि सारा संसार स्वर्ग बन जाये। जन्म से लेकर मृत्यु तक कोई भी कष्ट का अनुभव न करे। सत्य का प्रचार हो, सत्य का व्यवहार हो। सत्य का भाषण हो।

उन्होंने मनुष्य जाति के उत्थान के लिये जहां आर्य समाज रूपी संस्था की स्थापना की वहीं सत्यार्थ प्रकाश जैसे ग्रंथ की रचना भी की जिसमें जात पात वर्ण व्यवस्था, ईश्वर जीव प्रकृति, आचार विचार भारतीय मत मतान्तरों का विवेचन किया। आज भी महर्षि दयानन्द के विचारों की नितान्त आवश्यकता है। आज का भारत युवाओं का भारत है। भारत की जवानी नशे में बह रही है। विशेष कर पंजाब जोकि भारत का खडग कहलाता था, आज नशे में बर्बाद हो रहा है। ऐसे समय में आर्य समाज को पुन: संगठित होकर देश को इन समस्याओं से मुक्ति दिलवाने का बीड़ा उठाना चाहिये।

आज दीपावली के दिन उस महान आत्मा का महापलायन हुआ। आर्य जन इस पर्व को ऋषि निर्वाण उत्सव के रूप में मनाते हैं। आओ आज के दिन संकल्प करें कि हम भारत को भ्रष्टाचार मुक्त, अंधकार मुक्त, भ्रूण हत्या मुक्त, नशा मुक्त एवं स्वार्थहीन स्वच्छ राजनीति का देश बनाएं। आज के दिन उस महान आत्मा के प्रति यही राष्ट्र की सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

श्री संजीव आर्य जी नहीं रहे

आर्य समाज लक्ष्मणसर अमृतसर के कोषाध्यक्ष श्री संजीव कुमार आर्य की 19 अक्तूबर 2013 को एक सड़क हादसे में दुखद मौत हो गई। वह आर्य विचारों से ओत प्रोत थे और सदैव आर्य समाज के कार्यों को प्राथमिकता देते थे। उनके जाने से आर्य समाज को जो क्षति हुई है उसकी पूर्ति करना असंभव है। हमारी प्रभु से प्रार्थना है कि वह दिवंगत आत्मा को सद्गति प्रदान करे और उनके शोक संतप्त परिवार को यह दारूण दुख सहन करने की शक्ति प्रदान करे।

-प्रधान आर्य समाज लक्ष्मणसर-अमृतसर

गुरूकुल का आयुर्वेद महान
घर-घर में मिले रोगों से निदान

गुरुकुल च्यवनप्राश
सभी के लिए स्वादिष्ट,
रुचिकर, पौष्टिक रसायन।

गुरुकुल मधु
गुणवत्ता एवं ताज़गी के लिए

गुरुकुल पायोकिल
पायोरिया की आयुर्वेदिक औषधि
दांतों में खून रोके, मुंह की दुर्गन्ध दूर करे,
मसूड़ों के रोग, ढीले दांत ठीक करे।

गुरुकुल चाय
खाँसी, जुकाम, इन्फ्लूएंजा व
थकान में अत्यंत उपयोगी।

गुरुकुल शतशिलाजीत सूर्यतापी
पुष्टीदायक, बलवर्धक
शरीर में नया खून और उत्साह का अनुभव

गुरुकुल ब्राह्मी रसायन
बुद्धिवर्धक, स्फूर्तिदायक, दिमागी कमजोरी दूर करे।

गुरुकुल मधुमेह नाशिनी गुटिका
मधुमेह एवं प्रत्येक प्रकार के प्रमेह में लाभदायक

अन्य प्रमुख उत्पाद
गुरुकुल द्राक्षारिष्ठ
गुरुकुल रक्तशोधक
गुरुकुल अश्वगंधारिष्ट

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी, हरिद्वार डाकघर : गुरुकुल कांगड़ी-249404, ज़िला-हरिद्वार (उत्तरांचल) फोन : 0134-416073

शाखा कार्यालय : 63, गली राजा केदार नाथ, चावड़ी बाज़ार, दिल्ली-6, फोन : 23261871

श्री प्रेम भारद्वाज महामन्त्री, सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक द्वारा आर. के. प्रिंटर्स प्रैस, टाण्डा फाटक जालन्धर से मुद्रित होकर आर्य मर्यादा कार्यालय, गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से इसकी स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए प्रकाशित हुआ। E-mail: apspunjab2010@gmail.com
आर्य मर्यादा में प्रकाशित सारी लेखन सामग्री से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं। प्रत्येक विवाद के लिए न्याय क्षेत्र जालन्धर होगा।